चैत्र २०१९
अप्रैल १९६२

परमानन्द संदेश

वर्ष २
अंक ६

परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

वर्ष २	अङ्क ६
चैत्र	अप्रैल
२०१९	१९६२

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी०के०१५/५१ सुड़िया,
बुलानाला वाराणसी—१
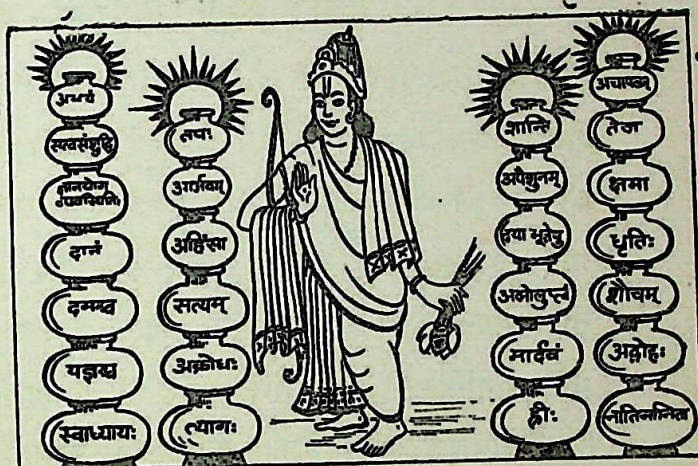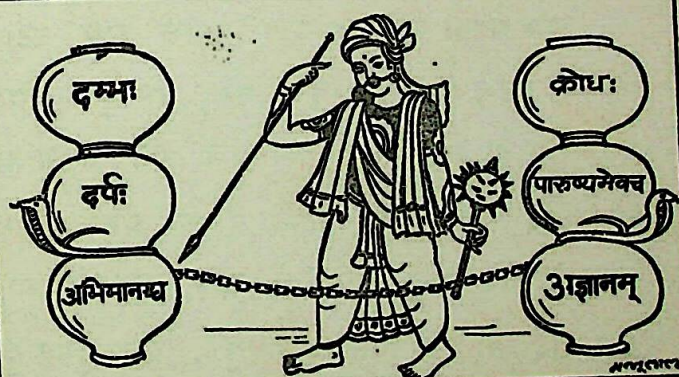
सच्चा सुख पाना सीख लो !

श्री हंस मुनि

बीती ताहि बिसार दे अबसे ही तू चेत ।
बिगरी हू बनि जायगी क्यों हरि नाम न लेत ।।

अब से प्रभु पाना सीख लो, निज दोष मिटाना सीख लो ।।टेक।।

यदि अखिलविश्व का राज्य मिले, देवों का भी सिरताज मिले ।
तो भी सुख-शान्ति नहीं मिलती, सच्चा सुख पाना सीख लो ।।१।।

यदि दुसह दुःखों से बचना है, नरकों में कभी न पचना है ।
तो भोग-सुखोंको त्याग प्रभुमें ध्यान लगाना सीख लो ।।२।।

यदि स्वर्गादिककी चाह तुम्हें, अरु है पसन्द यह राह तुम्हें ।
तो वेदविहित कर्मानुसार, तुम पुण्य कमाना सीख लो ।।३।।

यदि जग सरायमें सुख चाहो, नहिं कभी किसीसे दुख चाहो ।
तो भाई तुम जग में सुन्दर, व्यवहार बनाना सीख लो ।।४।।

जैसा सुख चाहो तुम अबसे. वैसा व्यवहार करो सबसे ।
तुम अपना सा दुःख जान, सभीके दुःख बटाना सीख लो ।।५।

है अटल प्रकृतिका नियम यही, जो कुछ बोओगे मिलै वही ।
तुम बो करके शुभ कर्म बीज, अब अशुभ हटाना सीख लो ।।६।।

यदि जीवन-मरण मिटाना है, अरु अमर शान्ति सुख पाना है ।
तो लोभ, मोह, अभिमान छोड़, सत्पथमें आना सीख लो ।।७।।

यदि जग उपवनसे ऊब चुके, अरु दुसह दुःखोंमें डूब चुके ।
तो 'हंस' अंश जिसके हो तुम, अब वह घर जाना सीख लो ।।८।।
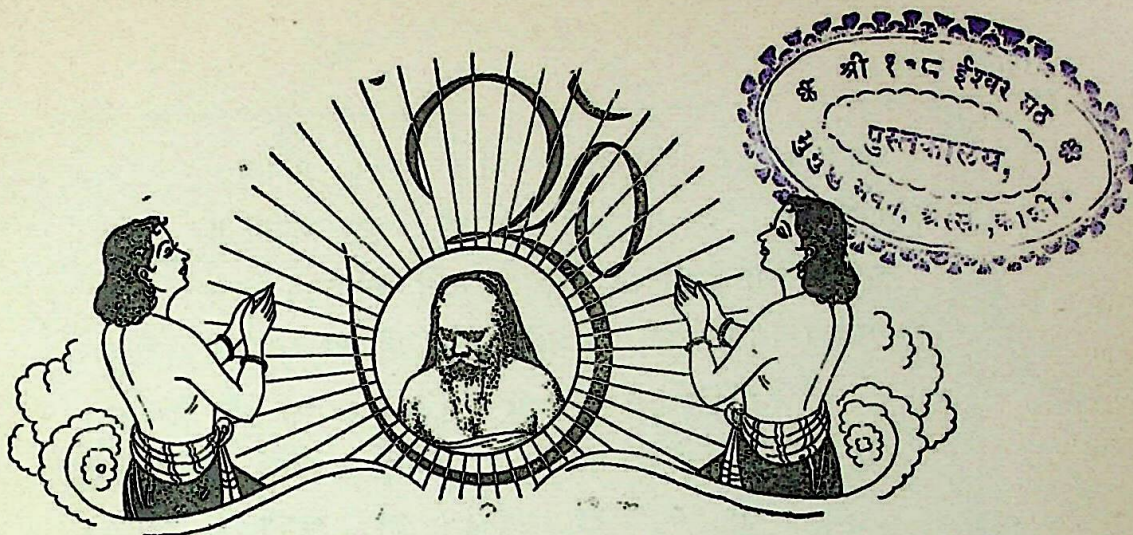
ॐ जय सद्गुरु शारदाराम

परमानन्द संदेश

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव ।
पढ़े सुने अमली बने, सो लख पावे प्रभाव ।।

वर्ष २ अङ्क ६ | वाराणसी चैत्र संवत् २०१६ अप्रैल १९६२ ई० | मूल्य—५० नये पैसे वार्षिक—५) रुपये

ज्ञान-गीत

⊙

जो मोक्ष है तू चाहता, विषसम विषय तज तात रे ?
आर्जव क्षमा संतोष शम-दम पी सुधा दिन रात रे ??
संसार जलती आग है, इस आगसे झट भागकर ?
आ शान्त शीतल देशमें, हो जा अजर ! हो जा अमर ??

पृथ्वी नहीं, जल भी नहीं, नहिं अग्नि तू नहिं है पवन ।
आकाश भी तू है नहीं, तू नित्य है चैतन्यघन ।।
इन पाँचका साक्षी सदा, निर्लेप है तू सर्व पर ।
निज रूपको पहिचानकर हो जा अजर ! हो जा अमर !!

चैतन्यको कर भिन्न तनसे, शांति सम्यक् पायगा।
होगा तुरत ही तू सुखी, संसारसे छुट जायगा॥
आश्रम तथा वर्णादिका, किञ्चित् न तू अभिमान कर।
सम्बन्ध तज दे देहसे, हो जा अजर! हो जा अमर!!

नहिं धर्म है न अधर्म तुझमें दुःख-सुख भी लेश ना।
हैं ये सभी अज्ञानमें कर्त्तापना भोक्तापना॥
तू एक द्रष्टा सर्वका, इस दृश्यसे है दूरतर।
पहिचान अपने आपको, हो जा अजर! हो जा अमर!!

कर्तृत्वके अभिमान काले सर्पसे है तू डसा।
नहिं जानता है आपको; भव-पाशमें इससे फँसा॥
कर्ता न तू तिहुँ कालमें, श्रद्धा-सुधाका पानकर।
पीकर उसे हो जा सुखी, हो जा अजर! हो जा अमर!!

'मैं शुद्ध हूँ' 'मैं बुद्ध हूँ' ज्ञानाग्नि ऐसी ले बला।
मत पाप, मत संताप कर, अज्ञान-बनको दे जला॥
ज्यों सर्प रस्सी माँहि जिसमें भासता ब्रह्माण्डभर।
सो बोध-सुख तू आप है, हो जा अजर! हो जा अमर!!

अभिमान रखता मुक्तिका, सो धीर निश्चय मुक्त है।
अभिमान करता बन्धका, सो मूढ़ बन्धन-युक्त है॥
जैसो मती वैसी गती, लोकोक्ति यह सच मानकर।
भव-बन्धसे निर्मुक्त हो, हो जा अजर! हो जा अमर!!

आत्मा अमल, साक्षी अचल, विभु, पूर्ण शाश्वत मुक्त है।
चेतन असंगी, निस्पृही, शुचि, शान्त, अच्युत तृप्त है॥
निज रूपके अज्ञानसे, जन्मा करे, फिर जाय मर।
भोला! स्वयंको जानकर, हो जा अजर! हो जा अमर!

सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराजका

प्रवचन
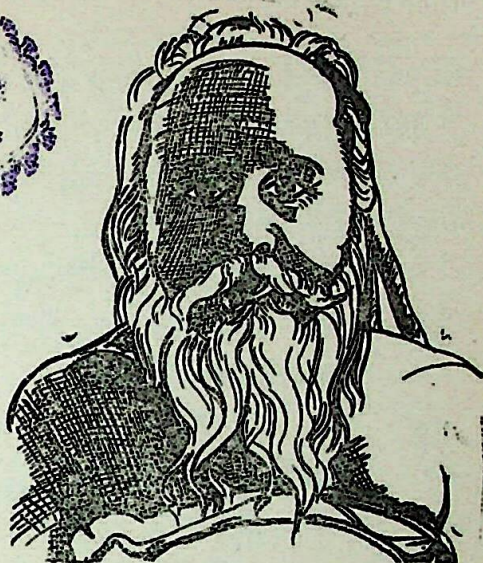
ॐ ब्रह्मको सिरनायके आत्म करो विचार।
सदा सबहिं ॐ स्तुति कर रहे वेद पुकार॥

भाई, बहनो, सज्जनों! आज सबेरेसे भगवान रामका कीर्तन, कथा, पूजन आदि कार्य-क्रम चल रहा है। रामके भक्त तो १२ महीने रामका ध्यान करते हैं। राम शब्दका अर्थ बड़ा व्यापक है; वह सबके हृदयमें है, वही सब कर्म कर रहा है। राम हृदयमें है उसे केवल खोजनेकी जरूरत है। गुरु नानक देवजी कहते हैं "तूँ ही निरंकार" ऐसा किसको बता रहे हैं? उस व्यापक रामको बता रहे हैं। राम जीवसे भिन्न नहीं है, यदि भिन्न है तो दो होगा। और दो होनेसे झगड़ा होगा। भगवान श्रीकृष्णजी गीतामें अर्जुनसे कहते हैं कि हे अर्जुन मेरे सिवा इस विश्वमें दूसरी वस्तु है ही नहीं। सत्य, अविनाशी, चेतन मैं हूँ। जड़ माया स्वरूप है वह भी मैं ही हूँ। मतलब यह कि जो ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टि है वह "तूं ही निरंकार है।" प्रभुके रहनेके अनेक स्थान बताए जाते हैं। जैसे—गोलोकमें है, बैकुण्ठ लोकमें है। यह केवल मतभेद है, ब्रह्म तो परिपूर्ण है। राम व्यापक है। वही राजा दश-रथके घर पुत्र हुए हैं।

ब्रह्म जो है वह एक ही है केवल इस विश्वकी सम्भालके वास्ते ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनकर विश्वकी रचना पालन, संहार करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ जो ब्रह्म व्यापक है वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश है। सोनेका हार कल्पित है मिथ्या है उसमें मूल वस्तु सोना है हार के टूट जाने पर सोना ही रह जायगा। उसी प्रकार केवल एक प्रभु परमात्मा ही सत्य है। लोकवाणी, वेद वाणी जीवात्माका नाश नहीं होता। सज्जनको स्वर्ग मिलेगा। दुर्जनको नरक मिलेगा। जीवात्माका कभी नाश नहीं होता, शरीरका नाश होता है। सत् वस्तु राम है जो सबमें रम रहा है। वही राम ही वसुदेव-देवकी, नंद-यशोदाके घर कृष्ण रूपमें आए हैं, उन्होंने ही दशरथके घर जन्म लिया।

भागवत किरणमें एक शब्द आता है—

रघुवर श्यामका अकथ कथनिया।
मच्छ कच्छ बराहमें आए;
कोउ नहीं तुलत तुलनिया।
आप नाना रूप महि में धरा है,
है अवतरनकी असीम करनिया।
चौरासी लक्ष वरतन में,
एक आपी भरा है भरनिया।
आपी उपजत आपी उपजावत,
रघुवर-श्याम गहहु गहनिया।
शारदाराम शरन रक्षक ॐ जी,
आस रघुवर सत रहो रहनिया।
॥ शा० भागवत किरण प्र० ९ ॥

रघुवर कहनेसे रघुवंशी। राजा रघुके जन्मसे जो वंश चला उसे रघुवंश कहते हैं। इस रघुवंशमें जन्म लेने वाले श्री राम जी ईश्वर हैं। उनका आचरण, व्यवहार जो है, वह अकथनीय है। उनकी महिमा अकथ है। श्री राम और लक्ष्मण दोनों बन गए थे रावणका संहारके लिए। उन्होंने पानीपर पुल बनाया उनकी सहायता बनचरोंने की। पत्थर बनी हुई अहिल्याका पद-स्पर्श मात्रसे उद्धार किया है। ताड़काका बध करके विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराये हैं। लंकापतिको हराये हैं। सनातन धर्मकी रक्षा कर-कराके सदेह बैकुण्ठ को गए हैं। लक्ष्मण सदेह नहीं गए हैं और भी कोई सदेह नहीं गए हैं केवल राम सदेह गए हैं, उन्हें हम अकाल बोलते हैं, क्योंकि उनको काल ग्रहण नहीं किया है।

अवतारके मुकाबले कोई काम नहीं करता। महात्मा कर्म करते हैं, उनका कर्त्तव्य है दूसरेके तमोगुणका नाश करना। अवतार दोनों कार्य करते हैं, अपनी शक्ति भी बताते है और रक्षा भी करते हैं। अवतार शस्त्रबल और आत्मबल दोनों रखते हैं। हिन्दुओंके रक्षक राम-कृष्ण अवतार हुए हैं।

'आपी' कहनेसे याने जो ब्रह्मरूप है निरंकार है। असीम कहनेसे उनका कर्म कभी नाश होने वाला नहीं। सारा विश्व उनका यश गावेगा। चौरासी लाखमें मनुष्यकी योनि चार लाख मानी जाती है। जलचर प्राणीकी ग्यारह लाख, मच्छर की सवा दो लाख योनि ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन आता है। मतलब यह कि चौरासी लाख योनियोंमें एक राम ही भरा हुआ है। एक ही ब्रह्म है। परन्तु अज्ञानवश सब अपने आपको अलग-अलग मानते हैं। यदि ब्रह्मज्ञान हो जावे तो कोई किसीसे अलग नहीं। जितेन्द्रिय सज्जन मनुष्य १०० वर्ष तक जीवेगा। जो इन्द्रियोंमें आसक्ति रखेगा वह जल्दी खतम हो जावेगा। 'भरनिया' याने बर्तनमें कोई चीज रखा हुआ है। हमारे अन्दर प्रकृतिका कार्य भरा हुआ है। गुरु नानकदेव जी लिखते हैं—

पांच तत्से तन रच्यो, जानो चतुर सुजान।
जेहि ते उपजै नानका, लीन ताहिमें मान॥

तुलसीदासजी विग्रह करके लिखते हैं—

छिति, जल, पावक, गगन, समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा॥

हड्डी, मांस, केश ये पृथ्वीके कार्य हैं अपने केशोंका अहंकार नहीं करना। केश तो

पशुओंको भी होते हैं। केश रखें या न रखें कोई बात नहीं परन्तु उसका अहंकार नहीं करना। केश यह पृथ्वीका कार्य है। हमारे शरीरमें जो रक्त आदि हैं वह पानीका अंश है। हमारे शरीरमें जो गर्मी, जठराग्नि है वह अग्नि का अंश है। नाकसे प्राणवायु निकलता है वह वायु का अंश है। मुख, कान, आँख, आदिमें जो अवकाश है वह आकाशका अंश है। हमें अपने शरीरका अहंकार नहीं करना चाहिए, अपनी बुद्धिका अहंकार नहीं करना चाहिए, अपने ज्ञानका अहंकार नहीं करना चाहिए। हमेशा यही विचार रखना चाहिए कि अहं ब्रह्मास्मि' तो सुख रूप हो जावेगा।

चौरासी लाख योनिमें एक ब्रह्म ही भरा हुआ है, तब ही हम देखते हैं, खाते हैं, पीते हैं। नेहरूकी शक्तिसेही सरकारी कर्मचारी लोग काम करते हैं। हमारे शरीरके ओहदेदार याने नेत्र हमेशा रूपको देखेगा। पैरका धर्म है शरीरको उठाना आत्माका बल लेकर के। जैसे कोई घड़ा पानीसे भरा है तो काम देता है। प्यास बुझाता है। उसी प्रकार शरीरमें प्रभु परमात्मा आत्मारूपसे विराजमान है, जिससे सारा व्यवहार चलता है। प्रभु परमात्मा सबके हृदय में निवास करता है। परमात्मा ज्योति-स्वरूप व्यापक है। वह हमारे शुभाशुभ कर्मका फल देता है और वही हमें शक्ति देता है। ईश्वर जीवसे भिन्न नहीं है। एक दृष्टांत है—समुद्रके किनारे दो संत बैठे थे। उनमेंसे एक संतने दूसरे संत से कहा कि ये जो समुद्रमें पानीकी लहरें उठ रही हैं ये समुद्रके पानीसे अलग हैं। दूसरेने कहा कि नहीं वे समुद्रका ही रूप हैं। यदि आप अलग समझते हैं तो ये चद्दर ले जाइए और इसमें लहरोंको भरकर लाइये। जब संत उस चद्दरको लेकर लहरें पकड़ने गए तो सब पानी ही बना रहा लहरोंको न पकड़ सके। अन्तमें आकर उन्होंने दूसरे संतसे कहा कि आपका कहना सत्य है। सब एक पानी रूप ही है। हम आपका वचन मानते हैं।

इसी प्रकार जो सत्पुरुष हैं वे सब कुछ उसी प्रभुका स्वरूप समझते हैं और उसी प्रभुको खोजते हैं। मायामें फँसे हुए मनुष्य स्त्री, धन, दौलत खोजते हैं, इनको छोड़ यदि प्रभुको खोजने लग जावें तो सब कुछ अपने आप आ जावेगा, प्रभु राममें लव लग जायगा सब रिद्धि-सिद्धि मिल जाएगी। सबमें वही भरा हुआ है। परमात्मा आप ही पैदा होता है और आप ही पैदा करता है। हे मन! ऐसा जो रघुवर श्रीराम हैं उनको तुम धारण करो।

श्रीराम एक बचनी, एक पत्नी थे। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। हे मन! तू उनके गुणको, नामको हृदयमें गहो।

हे जीव तू सिर्फ एक परमात्माको याद करो। जो गुरुके मुखसे दिया गया हो उस नाम को जपो। हर एक नाम कल्याण कारक है। 'नदिया एक घाट बहुतेरे' परन्तु हर घाटपर उसी नदीका जल होगा चाहे जिस घाट पर स्नान करो। जल वही प्रयोजन देगा। वही गुण प्रकट करेगा। कपड़ेकी सफाई करेगा। उसी प्रकार चाहे जिस नामसे जपो कल्याण होगा। इसमें रंचमात्र संशय नहीं है।

सदा अपने धर्ममें विश्वास रखें और किसीके धर्मका खंडन न करें। एक दृष्टान्त है—एक भक्त चौकीपर दूध, पानी, दही रखकर, मृगछाला बिछाकर पासमें ही बैठा भगवानके सगुणरूपका ध्यान करता था। उसी समय वहाँसे एक निराकारको माननेवाले महात्मा गुजरे, उन्होंने उस भक्तसे पूछा कि हे भक्त तुम क्या कर रहे हो? भक्त बोला—"अपने भगवानका ध्यान कर रहा हूँ। भगवान आवेंगे तो दहीसे उनका सिर धोवेंगे, जलसे स्नान करावेंगे और दूध पिलावेंगे।" महात्मा बोले—"भगवानका कोई आकार नहीं है तुम उसे कैसे नहलाओगे वह तो व्यापक है, निराकार है।" ऐसा बोलकर महात्मा चला गये। भक्तका मन चंचल हो गया। महात्मा अपने स्थान पर जाकर समाधि लगाने लगा। परन्तु समाधी नहीं लगी। तब आकाशवाणी हुई कि तुमने मेरे भक्तका मन दुविधामें डाला है। जाओ उसका मन जोड़ो तब तुम्हारी समाधि लगेगी और शान्ति मिलेगी।

महात्मा भक्तसे जाकर बोले कि हे भक्त तुम अपने प्रभुका ध्यान करो, तुम्हारे भगवान जरूर आएँगे। वह भक्त फिरसे मन एकाग्र कर प्रभुका ध्यान करने लगा। तब उस महात्माकी समाधि लगी। सदा अपने धर्ममें लगे रहो किसी का खंडन न करो। हिन्दू-मुसलमानके इष्टमें भेद नहीं है। सबमें आत्मा ही परिपूर्ण है।

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोय संग समाई।

बानीमें ऐसा आता है। इसमें स्पष्ट देखना चाहिए। आत्मामें विकार नहीं आता, बुद्धिमें, मनमें विकार आता है। सबमें आत्मा विराजमान है तो फिर विरोध किससे करना है? यदि कोई ज्ञानी बनना चाहे तो किसीका खण्डन न करे।

संग्रहकर्ता—सरदारशाह 'सलुजा'।

राम

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

अभेददर्शी ज्ञानी योगी जिस अनन्त नित्य आनन्द चेतन स्वरूपमें रमण करते हैं अर्थात् अभेदभावसे चिन्तन करते हैं वही परब्रह्म राम शब्दसे कहा जाता है।

परमात्मा की खोज

स्वामी वेदान्त तीर्थजी महाराज

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्या—
त्मनात्मानमभि संविवेश ॥

॥ यजुर्वेद ३२ ।११॥

सब भूतोंको पूर्णरूपसे जाँच करके, सब लोकों, कर्म फल भोगोंकी परीक्षा करके, सब उपदिशाओं और दिशाओंकी अथवा देश-देशान्तरकी परीक्षा करके, एक रस प्रवाहित होने वाले सत्यके प्रथम उत्पादकके भीतर उपस्थित होकर आत्माके द्वारा व्यापक परमात्मामें मैं प्रविष्ट हो गया हूँ ।

प्रभुके दर्शन विना मृत्यु भय नहीं छूट सकता । अतः भगवान्के अवश्य दर्शन करने चाहिये । संसारके एक-एक पदार्थको ईश्वर समझकर उसके पास गये । किन्तु वहाँ रस न था । प्रभुकी पहचान वेदने बताई थी—रसेन तृप्तः—रससे तृप्त । ये रससे रीते (खाली) मिले । इनको प्रभु समझना साधककी भूल थी, वह इन रस-रिक्त पदार्थोंसे विरक्त हो जाता है, उसका चित्त ऊब जाता है ।

परीक्ष्य लोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
(मुण्डकोप० १।२।७२)

"कर्म्मसे संचित लोकों (भोगों) की परीक्षा करके ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) दुःखी हो उठता और कहता है—"विनाशी पदार्थोंसे वह अविनाशी नहीं मिल सकता' ।"

किन्तु इस खोजके लिये देश-देशान्तर घूमने और सब भूतोंके निरीक्षणसे उसे परतत्त्व का कुछ कुछ आभास मिलता है । वह उसका उपस्थान करता है, निकट होकर उसे अपनानेका यत्न करता है । तब उसे पता लगता है कि—

दिव्ये ब्रह्मपुरेह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतितिष्ठतः ।
मु० २।२।७

अन्तरात्मा इस हृदयाकाश रूपी दिव्य ब्रह्मपुरमें विराजमान है । जिसकी खोजको बाहर भटक रहे थे, वह तो अपने अन्दर बैठा है ।

आत्मनाऽत्मानमभिसंविवेश ।

'वह आत्माके द्वारा उस परमात्मामें प्रवेश करता है ।'

शरीर इन्द्रियादिकको छोड़कर आत्माको उसमें लगानेका यत्न करता है ।

उपनिषद् ने कहा है—

स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्—॥

मुण्डको० २।२।६

वह अन्तरात्मा अनेक प्रकारसे प्रकट होता हुआ अन्दर विचर रहा है। 'ॐ' पदके द्वारा उसका ध्यान करो।

भगवान् को—अन्तरात्माको पाना है, तो 'ॐ' के द्वारा उसका स्मरण करो। वेदने भी कहा है—

ओम् स्मर = ओम् को सिमर।

भगवान्के अनन्त नाम हैं क्योंकि भगवान् के गुण अनन्त हैं। एक-एक गुणका प्रकाशक एक-एक नाम है। उसका निजी नाम 'ॐ' है। इसमें सीधी-सीधी युक्ति यह है कि मनुष्य तनही ऐसा है जिसमें रहकर आत्मा परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। अतः परमात्माकी प्राप्तिका साधन ऐसा होना चाहिए जिसे असमर्थसे असमर्थ मनुष्य भी प्रयोगमें ला सके। यदि मनुष्य-जन्म पाकर अङ्ग आदिकी विकलताके कारण वह परमेश्वरको पानेके अयोग्य हो जाये, तो परमेश्वरका उसे नर-तन देना व्यर्थ हो जाए। अतः परमात्माके प्रणिधानका साधन उसका नाम ऐसा होना चाहिए, जिसे गूंगा तक भी ले सके। गूंगा गॉड, God) रहीम, रहमान, भगवान् आदि पवित्र नामोंका उच्चारण नहीं कर सकता, किन्तु 'ॐ' पदका उच्चारण वह भी कर सकता है, अतः 'ॐ' परमात्माका निजी नाम है। इस 'ओम्' की आराधनाके लिए किसी बाह्य करण की आवश्यकता नहीं। कहा भी है—

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्म्मणा व।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तु
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।

मुण्डको० ३।१।८

भगवान्का ज्ञान न आँखसे होता है, न वाणीसे, न ही अन्य इन्द्रियों द्वारा इसका ज्ञान होता है। कोई तप और चौथे कर्मसे उसका बोध नहीं होता। ज्ञान द्वारा अपनी आत्माको शुद्ध करके जो उस निर्विकारका ध्यान करता है वह उसके दर्शन कर पाता है।

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन।"

वहाँ आँख नहीं जा पाती, न वाणीकी वहाँ गति है। वह तो मनकी पहुँचसे भी बाहर है। अतः—आत्मनात्मानभिसंविवेश। 'मैं अपने आत्माके द्वारा उस अन्तरात्मा में प्रवेश करता हूँ।'

आत्माके द्वारा अन्तरात्मामें प्रवेश तभी हो सकेगा, जब बाह्य विषयोंसे आत्मा पराङ्-मुख हो जाये, उनसे मुख मोड़ ले। अज्ञानके कारण वह अपने भीतर विद्यमान आनन्दसागर परमपवित्र रससरोवरमें डुबकी न लगाकर बाहर गन्दभरे तालोंमें गोते खा रहा है। दोनोंमें विवेकके लिए इससे पहले 'ऋतका प्रथम प्रवर्त्तक' वेद, और शास्त्रों का अभ्यास करना होगा। जिसकी आराधना करनी है उसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान तथा उसके आराधनाके सच्चे विधानका ज्ञान होना अतीव आवश्यक है। उसका यथार्थ ज्ञान विषय-विषसे बचाकर ब्रह्मामृतकी ओर प्रेरित करता है। ब्रह्मामृतका सरोवर अपनी आत्मामें बह रहा है, अतः अन्दर की ओर जाना होता है। उधर जानेकी भावनाके जागने पर ये बाह्य साथी छूट जाते हैं।

हमें मानसिक प्रसन्नता कैसे प्राप्त हो सकती है?

ले०—जयकान्त झा

हमारा जीवन कितना भी व्यस्त क्यों न हो, हमें चाहिए कि प्रति दिन कुछ समय निकालकर किसी एकान्त स्थानमें बैठकर, मनकी वृत्तियोंको सब ओरसे बटोरकर नेत्र बन्द किए हुए मन ही मन इन भावोंकी आवृत्ति करें—

"हमारा मन प्रभुकी शक्तिसे मनन करता है, हमारी बुद्धि प्रभुकी शक्तिसे निश्चय करती है। समस्त जगतमें जहाँ जिसमें जो कुछ भी हलन-चलन क्रिया है, सब प्रभुकी सत्ता एवं शक्तिसे ही हो रही है। हमारे चारों ओर निर्मल आकाशके अणु-अणुमें प्रभु ओत-प्रोत हैं। वायुके प्रत्येक स्पन्दनमें प्रभु भरे हैं, सूर्य-चन्द्रकी किरणोंमें, अग्निमें, प्रभुकी ही ज्योति भरी है। पृथ्वीके कण-कणमें प्रभु विराजित हैं, चर-अचर समस्त प्राणियोंमें प्रभुका निवास है। हमारी इन्द्रियोंमें समस्त शक्तियाँ सर्व शक्तिमान् प्रभुकी ओरसे आ रही हैं। प्रभु अनन्त मंगल-मय हैं, उनमें सर्वथा सदा मंगल ही मंगल भरा है। प्रभु एवं प्रभुका विधान दो वस्तुएँ नहीं हैं। जो प्रभु हैं, वही प्रभुका विधान है। विधाता और विधान, लीलामय और लीला एक ही हैं। अतः मंगलमय प्रभुका प्रत्येक विधान अनन्त असीम मंगलसे भरा है। जगत् में जो कुछ हुआ है, हो रहा है, होगा सबमें मंगल भरा है।"

इस प्रकार भावना करनेका परिणाम यह होगा कि ये विचार हमारे चारों ओर फैल जायँगे तथा अन्य समयमें भी, जबकि हम दूसरे दूसरे कार्योंमें व्यस्त रहेंगे, ये रह-रहकर हमारे मनमें स्फुरित होते रहेंगे। आज जो हमारा वातावरण प्रभुसे शून्य है, वह प्रभुसे भरने लगेगा। क्षण-क्षणमें क्षुद्रसी क्षुद्र घटनामें अमंलमयकी भावना होकर हमें जो प्रतिकूलता-की प्रतीति होती है, वह मिटने लगेगी और अन्तमें प्रभुके अतिरिक्त अन्य कोई भी सत्ता नहीं बच रहेगी। बस, उसी समय हमारी प्रति-कूलताका भी अन्त हो जायगा और हमें विश्वास हो जायगा कि एकमात्र भगवान ही ऐसे हैं जो कभी भी किसीका भी किसी भी अवस्थामें साथ नहीं छोड़ते। वे आत्म-रूपसे, अन्तर्यामी रूपसे सदा साथ रहते हैं। उनका अनन्त सौहार्द्र, हम चाहे कितने ही नीचे गिर जाँय, हमें मिलता ही रहता है। हमारा उनका सम्बन्ध सदा एक सा बना रहता है, अनादि कालसे बना है, अनन्तकाल तक बना रहेगा।

सागरके तलपर उठती हुई भयंकर लहरों को देखकर हम सोचते हैं कि सागर कितना

क्षुब्ध है, कितना चंचल है। पर यदि हम उसी समय सागरके भीतर प्रवेश करके देखें तो ज्ञात होगा कि इन तरंगोंसे कुछ ही दूर नीचे जाने पर समुद्रका गर्भ तो बिल्कुल शान्त है। ठीक इसी प्रकार हमारे मनपर विषयोंकी आँधी चलती रहती है किन्तु मनके भीतर प्रवेश करने पर अनुभव होगा कि जिस परमात्माके आधार पर यह मन अवलम्बित है वहाँ तो अखंड शान्ति छायी हुई है। वह शान्ति हमारी प्रतीक्षा कर रही है, प्रभु हमारी बाट देख रहे हैं कि कब हम बाहरी शान्तिको ढूढ़ना छोड़कर भीतर की ओर मुड़ें और प्रभुसे जा मिलें। चाहते हैं हम शान्तिको, पर ढूढ़ रहे हैं वहाँ जहाँ शान्ति का नितान्त अभाव है। शान्ति तो एकमात्र प्रभुमें है। प्रभु नित्य हमारे अन्दर ही विराजित हैं, हमारे इसी अशान्त मनकी ओटमें वे अवस्थित हैं, उन्हींके आश्रित हमारा मन है। अपने इतने निकट वर्तमान प्रभुसे जब हमारा मिलन होगा, तभी शान्ति मिलेगी।

हममेंसे सभी को सुखकी चाह है। साथ ही हमारा यह भी अनुभव है कि चाह न रहने पर भी दुःखकी प्राप्ति हमें होती ही रहती है। यह भी नितान्त सत्य है कि दुःख प्राप्त होनेमें हमारे भाव निमित्त हैं, घटना नहीं। अतः यदि किसी प्रकार हम अपने भावों की शुद्धि कर सकें, प्रत्येक घटनामें प्रभुके मंगल विधानका अनुभव करते हुए उन्हें ठीक-ठीक ग्रहण करना सीख जायँ तो हमारे दुःखोंका अन्त हो जाय। परिस्थितिके संचालनकी ओर हमारी दृष्टि केन्द्रित हो जाय, तभी घटनाकी वास्तविकता हमारे सामने क्रमशः व्यक्त होने लगेगी। जगत्में वस्तुतः कभी कुछ भी किसीके प्रतिकूल होता ही नहीं—यह तथ्य हमारे सामने आने लगेगा और हमें सच्ची शान्ति प्राप्त हो जायगी। यदि हम अपने अन्दर प्रभु प्रदत्त शक्तियोंका सदुपयोग करते हुए प्रभुके मंगल विधानको समझने का प्रयत्न करने लगे तो हमारी वृत्ति सुखरूप हो जायगी।

हम चाहते हैं कि सभी जगह हमें अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त हों। हम जहाँ जायँ, वहीं अमृत भरी वाणीसे हमारा स्वागत हो, सबकी वाणीमें हमारे प्रति आदर भरा हो, कोई भी हमारा चित न दुखाए। सभी हमारे लिए शुभ चिन्तन करें। बस, ठीक इसी प्रकार हमें भी चाहिए कि अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक प्राणीको हम अधिकसे अधिक सुविधा दें, किसीको भी हमारे द्वारा कष्ट न पहुँचे। मनसे सभीके लिए हम मंगल सोचें, भूलकर भी कभी किसीका अमंगल, अशुभ, अनिष्ट होनेकी इच्छा न करें। विपत्ति कालमें हमारी यह इच्छा होती है कि सभी हमें हृदयसे लगा लें, हमारे पास जो वस्तुएँ नहीं हैं उनकी पूर्ति कर दें, कोई हमारी उपेक्षा न करे। ठीक इसी प्रकार हमें भी यही चाहिए कि किसी को विपत्तिमें पड़ा देखकर उसे हम अपने हृदयसे लगालें, उसके जो अभाव हैं उन्हें यथासाध्य पूरा करने का प्रयत्न करें और किसी प्रकार उसकी उपेक्षा न करें।

उपर्युक्त बातों को हृदयस्थ करनेमात्रसे ही हमें मानसिक प्रसन्नता एवं सच्ची शान्तिका अनुभव होगा।

—०—

मानो तो देवता नहीं पत्थर!

भगवानकी और महापुरुषोंकी दया अपार है। वह माननेसे ही समझमें आती है। ईश्वरसे कोई जगह खाली नहीं है और महात्माओंका संसार में अभाव नहीं है। कमी है तो हमारे माननेकी है; वे तो प्राप्त ही हैं। न मानने से वे प्राप्त भी अप्राप्त हैं। घरमें पारस पड़ा है, परन्तु न माननेसे वह भी अप्राप्त ही है। भगवानकी दया और प्रेम अपार है। उन्हें न माननेसे ही वे अप्राप्त हो रहे हैं। मान लिये जायँ तो प्राप्त ही हैं। किसी दयालु पुरुष से कहा जाय कि आप हमारे ऊपर दया करें तो इसका मतलब यह होगा कि वह दयालु नहीं है। इसपर वह दयालु पुरुष समझता है कि यह वेचारा भोला है, नहीं तो मुझसे यह कैसे कहता कि दया करो। भगवान् और महापुरुष दोनोंके लक्षणोंमें यह बात आती है कि वे सबके मित्र और सुहृद होते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

गीतामें भगवान् स्वयं कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥
(५।२९)

'मुझको सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्वसे जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त होता है।'

वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा सदा-सर्वदा सब जगह प्रत्यक्ष मौजूद है, किन्तु इस प्रकार प्रत्यक्ष होते हुए भी हमारे न माननेके कारण वह अप्राप्त है। सच्चिदानन्दघन परमात्माका कहीं कभी अभाव नहीं है। इस प्रकार न मानना ही अज्ञान है और इस अज्ञानको दूर करनेके लिए प्रयत्न करना ही परम पुरुषार्थ है। हमें इस अज्ञानको ही दूर करना है। इसके सिवा और किसी रूपमें हमें परमात्मा की प्राप्ति नहीं करनी है। परमात्मा तो नित्य प्राप्त ही है। उस प्राप्त हुए परमात्माकी ही प्राप्ति करनी है, अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं करनी है। वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा सदा-सर्वदा सबको प्राप्त है, यह दृढ़ निश्चय करना ही परमात्माको प्राप्त करना है। इस प्रकारका निश्चय हो जानेपर परम शान्ति और परम पदकी प्राप्ति सदाके लिए प्रत्यक्ष हो जाती है। यदि न हो तो उसकी मान्यता में कमी है।

इस प्रकारके तत्व रहस्यको बतलानेवाले सन्त महात्मा भी संसारमें हैं, किन्तु हैं लाखों, करोड़ोंमें कोई एक। जो हैं, उनका प्राप्त होना दुर्लभ है और प्राप्त होनेपर भी उनका पहचानना कठिन है। उनको जान लेनेपर तो परमानन्द और परम शान्तिकी प्राप्ति सदाके लिए हो जाती है। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिये कि उसके माननेमें ही कमी है।

देवताओं का दर्प-भंग

श्री इलाचन्द्र जोशी

●

एक बार देवताओंने ब्रह्मकी महिमासे असुरोंके ऊपर विजय प्राप्त की। जिस प्रकार आगके आगे सब पतिंगे नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार देवताओंके आगे सब असुर विनाशको प्राप्त हो गये। पर वह आग देवताओंने स्वयं अपने ही से प्राप्त नहीं की थी। जिस प्रकार आगसे तपाया हुआ लोहेका गोला तिनकों और कपड़ोंके जलानेमें समर्थ होता है उसी प्रकार ब्रह्मरूपी अग्निसे तपे हुए वे देवता असुरोंको भस्म करनेमें समर्थ हुए थे। जैसे लोहा आगसे तपा हुआ न होने पर किसी भी वस्तुको जलानेमें समर्थ नहीं होता उसी प्रकार यदि देवतागण ब्रह्मरूपी अग्निसे न तपे होते तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे असुरोंका क्षय करनेमें कभी समर्थ न हुए होते।

पर देवताओंने इस परम सत्यको नहीं समझा। वह यह बात भूल गये कि समस्त सृष्टिके मूलमें निहित आदि शक्तिकी प्रेरणासे ही उन्हें बल प्राप्त हुआ है। वे वृथा अभिमान करने लगे—"इस विजयके कारण हम ही हैं, हमने अपनी ही महिमासे, अपनी ही शक्तिके प्रभावसे असुरोंको जीता है।"

ब्रह्मने जब देवताओंकी वह भ्रान्ति देखी और उन्हें अज्ञानके मोह और मदमें चूर पाया, तो उसने विचारा कि उन लोगोंकी आँखें खोलनी चाहिये, और उनका वृथा गर्व नष्ट करना चाहिये। यह विचार कर उसने यक्षका रूप धारण किया और देवताओंके निकट पहुँचा। उस अलौकिक तेजसे युक्त यक्षको देखकर सब देवता चकित रह गये। 'यह कौन है?" कहकर आपसमें कानाफूसी करने लगे। उसके निकट जानेका साहस किसीको नहीं होता था, क्योंकि वैसा तेज-प्रतापशील, महामहिम रूप उन्होंने उसके पहले कहीं नहीं देखा था।

सब देवताओंने अन्तमें आपसमें परामर्श किया कि किसको पहले उस आश्चर्यजनक रूपसे युक्त यक्षके पास भेजा जाय। यह निश्चय किया गया कि अग्नि ही इसके लिये उपयुक्त हैं, इसलिये पहले उसी को भेजा जाय। सबने मिलकर अग्निसे कहा—"हे अग्ने! तुम इस यक्षके पास जाओ और इस बातका पता लगाओ कि वह कौन है, यहाँ क्यों आया है, वह हमारे पक्षका है या कोई विपक्षी है।"

अग्निने कहा—"अच्छी बात है, मैं जाकर पता लगाता हूँ।"

ऐसा कहकर अग्नि देवता उस यक्षके

निकट गया। यक्षने उसे देखकर प्रश्न किया—"तुम कौन हो ?"

अग्निने बड़े अभिमानके साथ इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—"मैं अग्नि हूँ, मैं परमज्ञानी जात वेदा हूँ।"

यक्षने पूछा—"तुम्हारी विशेषता क्या हैं ? तुममें क्या शक्ति है ?"

अग्निने उत्तर दिया—"इस पृथ्वीमें जो कुछ भी पदार्थ वर्तमान है उसे मैं जलाकर भस्म कर डालता हूँ।"

यक्षने जब अग्निकी वह अभिमान भरी बात सुनी तो वह मन्द-मन्द मुस्कराया और उसके आगे एक सूखा हुआ तिनका बढ़ाता हुआ बोला—"इसे जलाओ।"

अग्नि देवताने उस तिनके को जलानेकी बहुत चेष्टा की, पर वह किसी तरह भी जलानेमें समर्थ नहीं हुआ। अपनी असमर्थता देखकर उसे अत्यन्त लज्जा हुई। वह खिसिआया हुआ देवताओंके पास लौट आया और बोला—"मैं तो नहीं जान पाया कि यक्ष यह कौन है।"

तब देवताओंने वायुसे कहा—"तुम जाकर पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है और यहाँ किस लिये आया है।"

वायुने कहा—"अच्छी बात है। मैं जाकर पता लगाता हूँ।"

यह कहकर वायु उस यक्षके पास गया। यक्षने उससे प्रश्न किया—"तुम कौन हो ?"

'मैं वायु हूँ, मैं शून्यमें विचरण करने वाला मातरिश्वा हूँ।'

यक्षने पूछा—"तुम्हारी क्या विशेषता है ? कौन सा विशेष पराक्रम तुममें है ?"

वायुने उत्तर दिया—"इस पृथ्वीमें जो कुछ है, मैं उसे उड़ाकर आकाशमें ले जा सकता हूँ।"

यक्षने जब उसकी इस प्रकारकी हर्षभरी बात सुनी तो उसने उसके आगे एक हलका-सा तिनका रख दिया और कहा—"इसे उड़ाओ तो जानें।"

वायुने बहुत चेष्टाकी, पर वह तिनके को अपने स्थानसे तनिक भी हिलाने-डुलानेमें समर्थ नहीं हुआ। अत्यन्त लज्जित होकर वह देवताओंके पास लौट चला और बोला—"मैं नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है।"

देवताओंने जब वायुको भी विफल पाया तो उन्होंने इन्द्रसे प्रार्थना करते हुआ कहा—"हे इन्द्र ! तुम ही सबमें अधिक प्रतापशाली हो, इसलिए इस अद्भुत तेजशील यक्ष के पास तुम ही जाओ और इस बात का पता लगाओ कि वह कौन है।"

देवताओं ने जब इस तरह की प्रार्थना की तो इन्द्र ने कहा—"अच्छी बात है। मैं जाकर निश्चय ही इस बात का पता लगाकर आता हूँ कि यह यक्ष कौन है, वह यहाँ क्यों आया है और वह हम लोगों से क्या चाहता है।"

ऐसा कहकर वह बड़े अभिमानके साथ यक्षके पास जानेके लिये आगे बढ़ा। इन्द्रको समीप आते देख यक्ष उसका गर्व चूर करनेके उद्देश्यसे उसके सामनेसे अन्तर्धान हो गया।

इन्द्र यह देखकर चकित रह गया और जिस ओर यक्ष अन्तर्धान हुआ था उसी ओर

भौंचक्का-सा खड़ा देखता रहा। सहसा उसने देखा कि सोनेके उज्ज्वल आभूषणोंसे युक्त अत्यन्त तेजस्विनी और परम शोभायमान हैमवती ब्रह्मविद्या उसके सामने विराजमान है। इन्द्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उस तेजस्विनीके पास गया और बड़े आदरके साथ उसने प्रश्न किया—"यह जो तेजवान यक्ष अभी अन्तर्धान हुआ है वह कौन था?"

वह हेमवती ब्रह्मविद्या बोली—"यह यक्ष ब्रह्म था। उसीकी महिमासे तुम लोगोंने असुरों पर विजय पाई है। उसके प्रभावके बिना अपनी निजी शक्तिसे तुम लोग कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकते। तुम लोगोंका जो वृथा अभिमान था कि स्वयं अपनी ही महिमा से तुम लोगोंने असुरोंको जीता है उसीको मिटानेके लिये यह यक्ष आया था। तुमने देख लिया कि उसके प्रभावके बिना अग्निदेवता एक सूखे तिनकेको भी जलानेमें समर्थ नहीं हो सका और वायु एक हलकेसे तिनकेको भी नहीं उड़ा सका।"

तब इन्द्र जाना कि वह यक्ष ब्रह्म था, और उनकी सारी शक्ति ब्रह्मकी शक्तिके प्रभाव से बनी हुई है; एकमात्र ब्रह्मकी शक्ति विश्व की सब शक्तियोंके मूलमें निहित है और वही सबको संचालित कर रही है।

होली

श्री भोले बाबा

होली जली तो क्या जली. पापिन अविद्या नहिं जली।
आशा जली नहिं राक्षसी, तृष्णा पिशाची नहिं जली॥
झुलसा न मुख आसक्ति का, नहिं भस्म ईर्षा की हुई।
ममता न झोंकी अग्नि में, नहिं वासना फूँकी गई॥

(२)

नहिं धूल डाली दम्भ पर, नहिं दर्प में जूते दिये।
दुर्गति न की अभिमान की, नहिं क्रोध में घूँसे दिये॥
अज्ञान को खर पर चढ़ाकर, मुख नहीं काला किया।
ताली न पीटी काम की, तो खेल होली क्या लिया॥

(३)

माजून खाई भंग की, बौछार कीन्हीं रंग की।
बाजार में जूता उछाला, या किसी से जंग की॥

गाना सुना या नाच देखा, ध्वनि सुनी मौचंग की ।
सुध बुध भुलाई आपनी, बलिहारी ऐसे रंग को ॥

(४)

होली अगर हो खेलनी, तो सन्त सम्मत खेलिये ।
सन्तान शुभ ऋषि मुनिनकी, मत सन्त आज्ञा पेलिये ॥
सच को ग्रहण कर लीजिए, जो झूठ हो तज दीजिये ।
सच झूठ के निर्णय बिना, नहिं काम कोई कीजिये ॥

(५)

होली हुई तब जानिये, संसार जलती आग हो ।
सारे विषय फीके लगें, नहिं लेश उनमें राग हो ॥
हो शान्ति कैसे प्राप्त, निशिदिन एक यह ही ध्यान हो ।
संसार दुःख कैसे मिटे, किस भाँति से कल्याण हो ॥

(६)

होली हुई तब जानिये, पिचकारि सद्गुरु की लगे ।
सब रंग कच्चे जाँय, एक रंग पक्के में रंगे ॥
नहिं रंग फिर चढ़े द्वैत का, अद्वैत में रंग जाय मन ।
है सेर जो चालीस सो ही, जानियेगा एक मन ॥

(७)

होली हुई तब जानिये, श्रुति वाक्य जल में स्नान हो ।
विक्षेप मल सब जाँय धुल, निश्चिन्त मन अम्लान हो ॥
शोकाग्नि बुझ निर्मूल हो, मति स्वस्थ निर्मल शान्त हो ।
शीतल हृदय आनन्दमय, तिहुँ ताप का पूर्णान्त हो ॥

(८)

होली हुई तब जानिये, सब दृश्य जलकर छार हो ।
अज्ञान की भस्मी उड़े, विज्ञानमय संसार हो ॥
"हो" मांहि हो लवलीन सब, है अर्थ होलीका यही ।
बाकी बचे सो तत्त्व अपना, आप सबका है वही ॥

(९)

भोला ! भली होली भयी, भ्रम-भेद कूड़ा बह गया ।
नहिं तू रहा नहिं मैं रहा, था आप सो ही रह गया ॥
अद्वैत होली चित्त देकर, नित्य जो नर गायगा ।
निश्चय अमर हो जायगा, नहिं गर्भ में फिर आयगा ॥

लंकापति रावण की मुक्ति

श्री वेदान्ती जी

⊙

मेघनादके मरनेपर देवता लोग फूलोंकी वर्षा करने लगे। मन्दोदरीको मेघनादके मरने पर महान् शोक हुआ तब रावणने उसको उपदेश दिया—

तब दशकंठ विविध विधि, समुझाई सब नारि।
नश्वर रूप प्रपंच सब, देखहु हृदय विचारि॥

शाप वश रावणका ऊपरी व्यवहार घोर राक्षसी था परन्तु अन्दरसे भगवान् राममें ही निष्ठा रखता था और संसारको नश्वर जानता था। मेघनादके मारे जानेपर रावण युद्धमें आ डटा और विचित्र माया दिखलाने लगा। कभी अनेक राम और लक्ष्मण बनकर भगवान् रामकी सेनाके सन्मुख सबको राम लक्ष्मणके रूपोंमें दिखाई पड़ने लगता है और कभी अनेक रावण बनकर सबका संहार करने लगता है तथा कभी हनुमानके अनेकों रूप धारण करके सबको कष्ट देने लगता है और उस मायाको लक्ष्मण भी सत्य इव मान रहे हैं। यथा—

प्रगटेसि विपुल हनुमान, धाये गहे पाषान।
तिन्ह राम घेरे जाइ, चहुँदिशि बरुथ बनाई॥

अन्तरधान भयउ छन एका।
पुनि प्रगटेउ खलरूप अनेका।
चहुदिशि धावहिंकोटिन्ह रावन।
गर्जहिं घोर कठोर भयावन।

रावण मायासे अनेक राम, अनेक हनुमान हो गया और रावण भी ज्योंका त्यों बना रहा और फिर अनेक रावण भी बन गया तब भी अपने असली रूपका त्याग नहीं किया उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके रूपमें प्रतीत होने लगते हैं परन्तु तब भी अखण्ड एक रस रहते हैं। जैसे माया रचनेके पहले एक रावण था और माया निवृत होनेपर एक रावण शेष रह गया उसी प्रकार सृष्टिके पहले एक अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही थे और सृष्टिके अन्त होनेपर भी सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही शेष रहते हैं। जैसे मायारचित अनेक रावण व हनुमादिका रावण ही निमित्त और उपादान कारण है उसी प्रकार सम्पूर्ण जड़ जङ्गम जगतके निमित्त और उपादान कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म राम हैं। जैसे अनेक हनुमानादिके रूपमें रावण ही था उसी प्रकार जड़ चेतन जगतके रूपमें सच्चिदानन्द राम ही हैं। जैसे अनेक रूप धारण करनेपर भी रावण ज्यों का त्यों एक ही रहा उसी प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड रूप धारण करनेपर सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम ज्योंके त्यों निर्गुणनिराकार एकरस अद्वैत रूपसे स्थित रहते हैं। जैसे रावणकी मायाको लक्ष्मण

ने संसारके मायाको मिथ्या होनेपर भी सच्ची मानी उसी प्रकार बड़े-बड़े पण्डित भी सच्चिदानन्द भगवान रामकी संसार मायाको मिथ्या होनेपर भी सत्य मानते हैं। जैसे अनेक हनुमानोंमें प्रत्येक यह अभिमान कर सकता है कि मैं रावण हूँ उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी यह अभिमान कर सकता है कि मैं सच्चिदानन्द राम हूँ क्योंकि सबका आदि और अन्तका स्वरूप वही है, जैसे सर्व तरङ्गोंका आदि और अन्तका स्वरूप जल है।

जैसे मायावी हनुमान यह नहीं जानते थे कि हम सबका वास्तविक स्वरूप रावण है, रावणसे भिन्न हम सब कुछ नहीं उसी प्रकार समस्त जीवोंको भी यह पता नहीं कि हम सबका वास्तविक स्वरूप सर्वाधिष्ठान सर्वव्यापक सच्चिदानन्द राम है और सच्चिदानन्द रामसे भिन्न हम सब कुछ नहीं। इस प्रकार अज्ञान ही मोह या अविद्या कहलाता है जो सर्व दुःखों का मूल है।

आगे प्रसंग आता है कि रावण भगवानके सामने आकर बहुत दुर्वचन कहने लगा तब भगवान् राम उसको समझाते हुए बोले—

जनि जल्पना करि सुजस नासहिं,
नीति सुनहिं करहिं क्षमा।
संसार महँ पुरुष त्रिविध,
पाटल रसाल पनस समा।
एक सुमन प्रद एक सुमन फल,
एक फलहिं केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर,
एक करहिं कहत न बाग ही॥

रथारूढ़ रावणके सन्मुख जानेपर भगवान् रामको रथ रहित देखकर विभीषणको बहुत घबराहट हुई और वह भगवानसे पूछने लगा और भगवान्‌ने उसका समाधान किया, उस प्रसंग को देखिये—

रावण रथी विरथ रघुवीरा।
देखि विभीषण भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा।
बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ रथ नहि तव पद जाना।
केहि विधि जितब वीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजन सारथी सुजाना।
विरति चर्म सन्तोष कृपाना।
दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा।
वर विज्ञान कठिनको दंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम यम नियम सिलिमुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा।
एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।

दोहा—महा अजय संसार रिपु,
जीति सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़,
सुनहु सखा मति धीर॥

हे उमा ! भगवान् रामसे विभीषण पूछ रहा है कि हे प्रभो ! महान् बलवान रावणसे आप किस प्रकारसे विजय प्राप्त कर सकते हैं जबकि आपके पास सवारीके लिए रथ तो दूर रहा पैरमें जूते भी नहीं हैं। ऐसा प्रश्न उत्पन्न होनेका कारण यह है कि भगवान् राममें सच्चिदानन्द ब्रह्म भावना उनके समीप रहते-रहते नष्ट हो गयी और मनुष्य भावना जाग्रत हो गई। भगवत् भावनाके अभावमें ही अन्तःकरण में निर्बलता आ जाती है और भय शोक मोह का सदन बन जाता है। भगवान् रामकी शरणमें जब विभीषण आया था तब भगवान रामके प्रति उनकी भावना थी सुनो—

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेश्वर कालहु कर काला॥

परन्तु जैसे रस्सीको भूलते ही रज्जुसर्प भय देने लगता है उसी प्रकार भगवान रामके ब्रह्मरूपका विस्मरण करते ही रावण का भय उत्पन्न हो गया।

अन्तःकरण पूर्ण रूपसे शुद्ध न होनेसे मनुष्यकी श्रद्धा घटती बढ़ती रहती है। जब तक विभीषण भगवान् रामसे दूर रहा तब तक उनको परमेश्वर मानता रहा और जब समीप रहने लगा तब मनुष्य मानने लगा। हनुमान जीके समान विरले ही भक्त होते हैं जिनकी श्रद्धा सदा एक रस रहती है। इसलिये राम विभीषणको मित्र और हनुमानको सुत कहकर सम्बोधन किया करते हैं। यथा—

सुनु सुत तोहिं उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि विचार मनमाहीं।

भगवान रामने विभीषणको यह संकेत किया कि हमारे पास एक ऐसा अजय रथ है जिसपर बैठकर समस्त संसारपर विजय प्राप्तकी जा सकती है। तात्पर्य यह कि आध्यात्मिक बलसे युक्त होनेपर संसारका किसी प्रकारका भय उसी प्रकार नहीं रहता जैसे जाग्रतमें खड़े होनेपर स्वप्न संसारका भय निर्मूल हो जाता है।

जैसे व्यवहारिक सत्तामें अभिमान करने पर प्रतिभासिक सत्तासे निर्भयता प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार परमार्थ सत्ताका अभिमान होने पर व्यवहारिक सत्तासे भी निर्भयता प्राप्त हो जाती है जिसको आध्यात्मिक बल कहते है और इसीको यहाँ भगवानने अजयरथ कहकर साधनोंके सहित वर्णन किया है।

वास्तवमें जीवका शत्रु संसार है जिसके उत्पन्न होनेके पश्चात् रावण आदि अन्य शत्रु सताने लगते हैं। जैसे यदि स्वप्न संसार उत्पन्न न हो तो स्वप्नका कोई शत्रु बन्ध्याके पुत्रके समान सिद्ध ही नहीं हो सकता कष्ट क्या देगा उसी प्रकार यदि जाग्रत संसार उत्पन्न न हो तो जाग्रत संसारका कोई भी शत्रु आकाशमें पुष्पके समान सिद्ध ही नहीं हो सकता फिर उसको जीतनेकी क्या आवश्यकता।

अतः संसारको ही मूल शत्रु मानना चाहिए क्योंकि जाग्रत और स्वप्नमें जब तक संसार दिखाई पड़ता है तब तक जीव दुःखी रहता है और सुषुप्तिमें जब संसार नहीं दिखाई पड़ता तब जीवको कोई दुःख नहीं रहता। यद्यपि संसार रिपुका जीतना भौतिक बलसे असम्भव है परन्तु जैसे कई सौ मनके महान

बलवान हाथीपर एक मनका आदमी मानसिक बलसे अधिकार कर लेता है उसी प्रकार महा अजय संसार रिपुपर आध्यात्मिक बलसे विजय प्राप्त की जा सकती है।

जैसे रथ पहियोंके विना नहीं खड़ा हो सकता उसी प्रकार आध्यात्मिक बल स्थानीय अजयरथको शूरता, वीरता दो पहिये अत्यावश्यक हैं। जीवका स्वभाव है कि जिस देहको धारण करेगा उसीमें अहं मम करने लगेगा यही जीव की दुर्बलता है और देहाभिमान न करना ही शूरता है। धन पुत्रादिमें ममत्व शून्य होनेके कारण उनके योग वियोगमें और समस्त सुख दुःखोंको स्वप्नवत जानकर उनके भोगकालमें किञ्चितमात्र भी हानि लाभ न मानना ही धीरता है। जैसे कुआँ खोदनेवाला धैर्यके साथ पृथ्वी खोदता चला जाता है जब तक पानी नहीं निकलता उसी प्रकार जो सर्वात्मा सच्चिदानन्द रामका जब तक साक्षात्कार नहीं होता तब तक बिना उकताए हुए तत्परताके साथ कठिनसे कठिन विघ्नोंके सिरपर पैर रखकर स्वाध्याय, सत्संग आदि भगवत साक्षात्कारके साधनोंमें उत्साहपूर्वक लगा रहता है उसको भी धीर जानना चाहिये।

जैसे रथमें ध्वजा-पताका होती है और उसको रस्सियोंमें बंधे हुए घोड़े खींचते हैं उसी प्रकार अजयरथमें सत्य और शील अर्थात् सत्यप्रिय हितकारी बचन बोलनेका स्वभाव ध्वज पताका तथा बल, विवेक, दम, परहित चार घोड़े हैं और क्षमा, कृपा, समता तीन रस्सियाँ हैं। क्षमा कर देनेसे जिस अपराधीका सुधार हो सकता है, शक्ति होने पर भी उसको दण्ड न देना क्षमा है और दुःखीकी प्रीति पूर्वक सहायता करना दया है। शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, हानि-लाभ सबको मायामात्र मिथ्या जानना समता कहलाती हैं।

जैसे शरीरका बल प्राण है उसी प्रकार भगवत प्राप्तिके समस्त साधनोंका बल विश्वास है। जैसे जबतक विषसे मिले हुए भोजनको कोई विषैला और संजीवनी-बूटीको अमरत्व प्रदान करनेवाली नहीं जानेगा तबतक उस विषैले भोजनसे प्रवृत्ति दूर होना और संजीवनी बूटीकी ओर प्रवृत्ति होना कठिन है उसी प्रकार जबतक यह विवेक न होगा कि समस्त भोग जन्म-मरणरूप दुःखको उत्पन्न करनेवाले हैं और केवल भगवत राम ही सुखदाता हैं जो जीवरूपसे सर्व अन्तःकरणोंमें प्रकट हैं तबतक इन्द्रियोंकी विषयभोगोंसे प्रवृत्ति दूर नहीं होगी। और सर्वभूतोंके हितमें भेदबुद्धि होनेके कारण रति न होगी। अतः क्रमशः विश्वास, विवेक, इन्द्रिय दमन और परहित अजयरथको खींचने वाले चार घोड़े हैं जो क्षमा कृपा समतारूपी रस्सियोंसे बंधे हुए हैं। जैसे रथको चलानेवाला सारथि चतुर होना चाहिए उसी प्रकार अजयरथका सारथि सुजान हरिभजन ही है। भेद भ्रान्तिको दूर करके आत्मा परमात्माका अभेद चिन्तवन ही सुजान हरिभजन है।

जैसे शत्रुसे युद्ध करनेके लिये अस्त्र-शस्त्र होना चाहिए उसी प्रकार महा अजय संसार रिपु को जीतनेके लिये वैराग्यरूपी ढाल, संतोषरूपी तलवार, दानरूपी फरसा, बुद्धिरूपी प्रचण्ड शक्ति

संशय विपर्यय रहित विज्ञानरूपी धनुष, मल-विक्षेप आवरणसे रहित मनरूपी तरकश, सम, यम, नियमरूपी बाण तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी पूजारूपी कवच परम आवश्यक है। दृश्य को स्वप्नवत मानकर सत्बुद्धि और सुखबुद्धि का अभाव ही वैराग्य है। सांसारिक सुखकी प्राप्ति-निवृत्तिमें हानि, लाभ अनुभव न करना और निजानन्दमें तृप्त रहना सन्तोष है। तन, मन, धन, विद्यासे दूसरेको सुख देना ही दान है। सर्वात्मा सच्चिदानन्द रामसे अतिरिक्त आकाशमें नीलमावत प्रतीत होनेपर भी दृश्य कुछ नहीं है, इस प्रकारका दृढ़निचश्य रहनेवाली बुद्धि ही प्रचंड शक्ति है। जैसे अज्ञानी देहको आत्मा जाननेमें किसी प्रकारका संशय भ्रम नहीं करता उसी प्रकार सच्चिदानन्द सर्वात्मा रामको संशय और भ्रमसे रहित अपनी आत्मा जानना वर विज्ञान कहलाता है। स्वच्छ दर्पणवत अज्ञान-संशय-भ्रमसे रहित मनको अमल अचल मन समझना चाहिए।

तरंगें जैसे जलसे पूर्ण हैं इसी प्रकार संपूर्ण जड़जङ्गम प्राणियोंमें सर्वाधिष्ठान व्यापक सच्चिदानन्द रामको पूर्ण देखनेको सम कहना चाहिये। देह इन्द्रियोंसे असंग रहना यम है और सर्वात्मा सच्चिदानन्द राममें उसी प्रकार अनुरक्ति होना जैसे अविवेकीको देहमें अनुरक्ति होती है नियम है यथा :—

देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यमुच्यते बुधै:।
अनुरक्तिः परे तत्वे सततं नियमः स्मृतः॥
(ब्रशिखि ब्राह्मण ३०)

जैसे शत्रुके अस्त्रशस्त्रोंसे बचनेके लिये कवच अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी सेवामें तन-मन-धन, सर्वस्व अर्पण कर देनारूप कवच उसको अवश्यमेव धारण करना होगा जो महा अजय संसार रिपु पर विजय प्राप्त करना चाहता है। कवच धारण किये बिना संसार को जीतनेकी आशा करना उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे सूर्यके बिना रात्रिके नष्ट होने की आशा व्यर्थ है। यदि सर्व अङ्गों से पूर्ण अजय रथपर इस प्रकारका कवच धारण करके स्थित हो जाये तो संसाररूपी शत्रु खोजने से भी उसी प्रकार नहीं मिलेगा जैसे सूर्यके प्रकाशमें रात्रिका और जाग्रत स्थिति हो जानेपर स्वप्नका खोजने पर भी पता नहीं चलता।

दो०—जीति मोह महिपाल दल,
सहित विवेक भुवाल।
करते अकंटक राज पुर,
सुख संपदा सुकालु॥

विभीषणका मोह नाश करके भगवान रामके बाणोंसे रावणके सिर कटकर गिर पड़ते थे परन्तु बार-बार पूर्ववत् नवीन वैसे ही उत्पन्न हो जाते थे जैसे सुषुप्तिमें जाग्रत स्वप्न स्थूल सूक्ष्म प्रपंचका अभाव हो जाता है परन्तु पुनः पूर्ववत् वैसा ही प्रतीत होने लगता है। जैसे सुषुप्ति में अविद्या और संस्कार शेष रहनेके कारण पुनः पुनः वैसे ही दृश्यकी प्रतीति होती रहती है। क्योंकि कारण अविद्या में कार्य दृश्य की सुषुप्ति में लय रूप निवृत्ति होती है अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती उसी प्रकार रावणकी नाभिकुण्डमें अविद्या स्थानीय अमृत शेष रहने के कारण उसके सिर कटने पर भी पुनः वैसे

ही उत्पन्न हो जाते थे। विभीषण द्वारा इस रहस्य को जान लेने पर भगवान राम ने :—

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि,
छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले,
मानहु काल फनीस॥

एक बाणके द्वारा रावणके नाभिकुण्डका अमृत जला दिया तथा बीस बाणोंसे बीस भुजाएँ काट डाली और दस बाणोंसे दसों शिरों को काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया तत्पश्चात्—

गर्जेउ मरत घोर रव भारी।
कहाँ राम रन हतौं पचारी।

रावणके हृदयमें भगवान् रामके प्रति अनन्य भक्ति थी परन्तु ऊपरसे शत्रुताका भाव दिखलाता रहा। उसने केवल शरीर छोड़ते समय ही राम शब्दका एक ही बार उच्चारण किया। और कभी अपने जीवन कालमें राम नहीं कहा। प्रसंग आनेपर रामको तपसी कहकर सम्बोधित करता था। हृदयसे एक बार भी नाम लेने का फल क्या हुआ, सुनो :—

तासु तेज समान प्रभु आनन।
हरषे देखि शंभु चतुरानन॥

जैसे घट फूटने पर घटाकाश महाकाशमें समा जाता है अथवा जलके नाश होने पर जलमें दिखाई पड़नेवाला सूर्यका प्रतिबिम्ब बिम्बसूर्यमें समा जाता है अथवा जलके नाश होने पर जलमें दिखाई पड़नेवाला सूर्यका प्रतिबिम्ब बिम्बसूर्यमें समा जाता है अथवा जैसे काष्ठमें प्रकट हुई विशेष अग्नि काष्ठके भस्म हो जानेपर सामान्य अग्निमें समा जाती है उसी प्रकार रावणका आत्मा भगवान रामके सच्चिदानन्द स्वरूपमें समा गया।

अबकी बेर निभाय दीजो जी

सतगुरु पइयाँ लागूँ जी,
नामं लखाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ.........।
घर अंधियार नयन नहिं सूझै,
ज्ञान का दीप जलाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ...नाम...
जनम जनम का सोया मनुआँ,
शब्दन मारि जगाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ...नाम...
विष की बेल बढ़े उर अन्दर,
अमरित बूँद चुवाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ...नाम...
गहरी नदिया अगम बहे धरवा,
खेकर पार लगाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ...नाम...
शरणागत की अरज गुसाईं,
अबकी बेर निभाय दीजो जी। सतगुरु पइयाँ...नाम...

मोक्ष का साधन

ज्ञान, कर्म अथवा उपासना

लेखक---सूर्यदेव वर्मा, वाराणसी--

⊙

मुक्तिका हेतु कर्म या उपासना नहीं, किंतु ज्ञान ही है क्योंकि यदि आत्मा में बँध सत्य होता तो उसकी निवृत्ति ज्ञानसे सम्भव नहीं बल्कि कर्म या उपासनासे होती। परन्तु बन्ध आत्मामें सत्य नहीं है, रज्जु सर्पकी तरह मिथ्या है जिसकी निवृति अधिष्ठानके ज्ञानसे ही हो सकती है, कर्म अथवा उपासनासे नहीं हो सकती, जैसे रज्जुका सर्प किसी क्रियासे दूर नहीं हो सकता केवल रज्जुके ज्ञानसे ही दूर हो सकता है। उसी तरहसे आत्माके अज्ञानसे जो बँध प्रतीत होता है उस बंधकी प्रतीति और अज्ञान आत्माके ज्ञानसे ही दूर हो सकता है—यदि कर्मका फल मोक्ष माना जाय तो मोक्ष अनित्य होगा क्योंकि यह नियम है कि कृषि आदिक कर्मका फल अन्नादिक हैं सो अनित्य है और यज्ञादिक कर्मका फल स्वार्गादिक भी अनित्य हैं। इससे सिद्ध हुआ कि कर्मका फल मोक्ष नहीं—इसी तरहसे उपासनाका फल यदि मोक्ष माना जाय तो वह भी अनित्य होगा क्योंकि उपासना भी मानस कर्म ही है। इससे मानना पड़ेगा कि केवल कर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं। ज्ञान ही मोक्षका हेतु है। क्योंकि अज्ञानका विरोधी ज्ञान है। कुछ विद्वानों का मत है कि मोक्षका हेतु कर्म, उपासना, व ज्ञान तीनों है और इसको सम समुच्चयवाद कहते हैं परन्तु शोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंने इसको ठीक नहीं माना है क्योंकि जिसको कर्तापने और भोक्ता पनेकी भ्रान्ति है वही कर्मकरता है। ज्ञानीको कर्मका और ज्ञानका फलसे विरोध है इससे भी ज्ञान, कर्मका समसमुच्चय वाद नहीं बनता क्योंकि कर्मका फल अनित्य संसार है और ज्ञानका फल नित्य मोक्ष है। कर्म, उपासनाका हेतु ज्ञानकी उत्पत्तिमें है मोक्षमें नहीं। इसलिए ज्ञानकी उत्पत्तिके पूर्व ही अंतःकरणकी शुद्धि और मनकी निश्चलताके लिए शास्त्र विहित कर्म व उपासना करना कर्तव्य है। परन्तु जो जिज्ञासु हैं और उनको मन्द बोध हुआ है उनको वेदान्तका श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही करना चाहिए, कर्म उपासना कर्तव्य नहीं—ऐसे साधकोंको भी जिनको बोध नहीं हुआ है परन्तु आत्माके जानने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गई है और भोगकी इच्छा निवृत हो गई है उनको भगवत प्राप्तिके लिए श्रवणादिक ही कर्तब्य है कर्म, उपासना नहीं। जिनको ज्ञानकी इच्छा है परन्तु भोगमें बुद्धि आसक्त होनेसे वेदान्त श्रवणमें प्रवृत नहीं हुआ है ऐसे जिज्ञासुको निष्काम कर्म और उपासना करना कर्तव्य है। जिसकी भोग विषयमें ही आसक्ति है और ज्ञानकी इच्छा नहीं है ऐसे वहिर्मुखको सकाम कर्म करना शास्त्रोंमें बताया गया है—ज्ञानवानके लिए कर्म, उपासना ज्ञान का विरोधी बताया गया है क्योंकि भेद बुद्धिके बिना कर्म उपासना हो नहीं सकता सो विद्वान को भेद भ्रांति है नहीं—इससे सिद्ध हुआ कर्म उपासना और ज्ञानका समसमुच्चय नहीं है बल्कि क्रम समुच्चय है।

—:०:—

इक देने मोक्ष दूसरा लेनेको जा गिरा

—एम० आर० जुल्का, धूलिया—

इक दिन विचार करने लगे अपने दिल में राम।
जिस काम को बन आये थे बाकी अभी है काम॥
वायदेसे होंगे देवता किस इन्तजारमें, चौदह बरस गुजर रहे सैर ओ शिकारमें॥

इतने में एक आहु* ए जर्री* पड़ा नजर।
खुशरंग रूप जिस्म सुन्हरी नरम बदन॥
क्या काले काले सुन्दर सींग छोटे-छोटे खुर।
जादूभरी आँखें थी छलावा था फित्नागर*।
देखा तो सामने से उभर कर निकल चला।
चौंका जरा तो चौकड़ी भर कर निकल चला॥
देखा सियाने तो कुछ जी लुभा गया, आहूका मृगनयनीको अन्दाज भा गया॥

बोलीं श्री सिया कि है क्या खूब यह हिरण।
क्या रंग मीनाकार है क्या खुशनुमा बदन॥
सोसन का फूल है कोई गुन्चा है या *दहन।
साये से भागता है यह शोखी का है चलन॥
हेनाथ लाओगर यहसुन्हरा हिरणमिले, क्याअच्छा मृगछाला होगरयहहिरण मिले

रघुराई सुन के इतना उठे मुस्करा चले।
तीर ओ कुमाँ को कन्धे के उपर सजा चले॥
सब राक्षसों का भेद कपट छल बता चले।
लक्ष्मण को रक्षक जानकी जी का बना चले॥
माया रची हुई थी कहाँका शिकार था, सब आप जानते थे जो होनहार था॥

निश्चय तो घातका है फिर भी दिल में पीर है।
इक हाथ में कुमान है चुटकी में तीर है॥
इक हाथ पास कान के और इक कुमान पर।
इक सीधा और एक चरण कुछ उठान पर॥
तिरछा तनाओ जिस्म का क्या आनबान पर।
ब्रह्माण्ड लोट हो गये इस छबि की शान पर॥
हल्का-सा था पसीना रुखे ताबदार* पर, आँखें लड़ी हुई थीं हिरणके शिकारपर॥

इक देने मोक्ष दूसरा लेने को जाँ गिरा।
तीरे निगाह के साथ ही तीरे कुमाँ गिरा॥
खाते ही तीर दर्शनों को मोड़ा फिर गया।
भाई लखन चलो यह सदा कहके गिर गया॥

*हिरण, *सोने का, *नटखट, *मुह, *तेजवान मुख।

सात शत्रु सात मित्र

[ले०—श्री रघुवंशदास जी उदासीन]

प्रत्येक मनुष्यके व्यक्तित्वमें सात शत्रु और सात मित्र विद्यमान रहते हैं। उन शत्रुओं के चंगुलमें फँसनेसे मनुष्य असफलता और मुसीबतमें फँस जाता है, जबकि मित्रोंका आश्रय लेनेसे सफलता और सुख प्राप्त करता है। आश्चर्य यह है कि सारे शत्रु और मित्र जाति, वर्ण या वर्गकी परवाह न करके हरेक व्यक्तिके जीवनमें उपस्थित रहते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्यकी किरणें और वर्षाकी बूँदें सज्जन और दुर्जन, अमीर और गरीब सबपर एक-सी गिरती है। विश्वमें हरेक व्यक्तिको अपनी उन्नति करनेका मौका परमात्माने बुद्धि विवेक द्वारा दे रखा है कि वह अपने ही भीतर वाले मित्रोंको जागृतकर उनकी मदद ले और अपने शत्रुओंको दूर रख उनसे अलग रहे।

शत्रु और मित्र कौन हैं ? उनके जाने वगैर हम कैसे उनसे बच सकते हैं कैसे उनसे बर्तावकर फायदा उठा सकते हैं। हमारी भावनायें दो प्रकारकी होती है। नकारात्मक तथा रचनात्मक। भावना मानवकी जबर्दस्त अटल शक्ति है। जीवनके बड़े-बड़े पुरुषार्थोंके मूलमें भावना ही प्रबल होती है। नकारात्मक भावनायें मानवको नीचे गिराती है असफलता और दुख के गर्तमें ढकेलती हैं रचनात्मक भावनायें उसे ऊँचा उठाती हैं तथा सफलता और आनन्दके शिखरपर ले जाती हैं।

नकारात्मक तथा रचनात्मक दोनों ही भावनायें सात-सात होती है। एक शत्रुका काम करती है दूसरी मित्रता निभाती है। इनमें कौन सी भावनायें अपनानी चाहिये इसके निर्णयका पूरा अधिकार मनुष्य को ही है।

प्रथम नकारात्मक भावनायें सात हैं जो मानवको दुर्गुणोंका केन्द्र बनाती हैं (१) भय (२) ईर्ष्या (३) द्वेष-घृणा (४) प्रतिशोध भावना (५) लोभ (६) अविश्वास और अन्धविश्वास (७) क्रोधादि। ये सारी भावनायें हमारे प्राण और जीवन शक्तिको दुर्बल बनाती हैं। जीवन को भीतर ही भीतरसे कुदेरती हैं। हमारे पैरमें बेड़ियोंकी तरह बाधायें डालती है। ये हमारी जिन्दगीको कुन्द बनाती हैं। संकुचित करती हैं तथा हमारे व्यक्तित्वको क्षुद्र बनाती हैं। यदि हम जीवनमें सुख आनन्द मानवता और सफलता चाहते हैं तो हमें इनसे बचना चाहिए। इनका शिकार नहीं बनना चाहिये। इनके विपरीत रचनात्मक भावनायें भी सात होती हैं उनके ही पथका अवलम्बन करना चाहिये। ये हैं—(१) प्रेम भक्ति (२) यौन आकर्षण (३) आशा-संतोष (४) श्रद्धा-मान (५) आत्म विश्वास (६) आकांक्षा (७) निष्ठा-वफादारी। प्रेम व्यापक तत्व है। विशुद्ध और उदात्त यौन आकर्षण रचनात्मक शक्ति है। जो कला-काव्य संगीत आदिको प्रेरणा देती है। आगे आशा

[शेष पृष्ठ ३२ पर देखिये]

संजीवन बूटी

संत परसराम

राम नाम सत औषधी, सत्गुरु संत हकीम।
जगबासी जीव रोगिया, स्वर्ग नरक क्रम सीम॥
कर्म रोग कटियो बिना, नहीं मुक्ति सुख जीव।
चौरासी में परसराम, दुखिया रहे सदीव॥
नाम जड़ी पच शहद में, देऊँ युक्ति बताय।
परसराम सच पच रहे, कर्म रोग मिट जाय॥

मुख हमाम दस्तो कर रसना। ररो ममों बूँटी रस घसना॥
घस घस कण्ठ तासक भर पीजे। यूँ अठ पहरी साधन कीजे॥
अब सत्गुरु पच देत बताई। गुरु आज्ञा सिष चलो सदाई॥
प्रथम कुसंग पवन बँध कीजे। साध सँगत घर मांहि बसीजे॥
समता सहज शयन कर भाई। अहं अग्नि मत तापो जाई॥
भोजन भाव भक्ति रुचि कीजे। लीन अलीन विचार करीजे॥
तामस चरखो दूर उठाओ। विष रस चिगट निकट नहिं लाओ॥
कपट खटाई भूल न लेना। मीठे लोभे चित नहिं देना॥
कुटक कुटिलता दूर करीजे। दुविधा द्वन्द दूध नहिं पीजे॥
लालच लूण लगन मत राखो। मुख ते कबहुँ झूठ मत भाखो॥
आपा बोझ शीश नहिं धरना। हुय निर्मल मुख राम उचरना॥
जगत जाल उद्यम परित्यागो। राम भजन हित निसदिन जागो॥
निर्गुण इष्ट स्थिरता गहिये। आन उपास लाग नहिं बहिये॥
प्रेम सहित परमातम पूजा। भरम कर्म छिटकावे दूजा॥
चेतन देव साधु को पूजे। राम नाम बिन सत्ता न सूजे॥
माला जाप तजे कर सेती। ररो ममो रट रसना सेती॥
अब सुन कुबिषन कुबच बताऊँ। राम जनों की चाल जताऊँ॥
भाँग धतूरा अमल न खाजे। तुरत तमाखू विष न उठाजे॥

मांस मद्य वारांगन संगा । पर नारी को तजो प्रसंगा ।।
चढ़ शिकार तिणचर मत मारो । चोरी चुगली चित्त न धारो ।।
जूवा खेल न खेलो भाई । जन्म जुवा ज्यूँ जात बिलाई ।।
दूत कर्म से दूरे रहिये । कुगती कपटी संग न बहिये ।
अनछान्यो जल पीजे नाहीं । सूक्ष्म जीव नीर के माँही ।।
गाढ़ा पट्ट दुपट्ट करीजै । निर्मल नीर छानकर पीजै ।।
चार वर्ण का उत्तम धर्मा । रामनाम निश्चे निहकर्मा ।।
लालच लोभ वेश तज देवै । अनन्त भाँति सन्तन कूँ सेवै ।।
चार वरण में भक्ति कराओ । सो सतगुरु के शरणै आओ ।।
सत्गुरु बिना भक्ति नहिं सूझै । भरम करम में जीव अलूझै ।।
यह सब कुपच किरीकर टाले । पलपल अमृत जड़ी सँभाले ।।
सतगुरु वैद्य कहे ज्यूँ कीजे । अग्या मेटि पाँव नहिं दीजे ।।

पच सच राखे परसराम, चाखे प्रेम प्रकाश ।
यूँ अठ पहरी साधतों, सकल कर्म का नाश ।।

भरम करम कछु रहन न पावे । नाम जड़ी का निश्चा आवे ।।
राम नाम औषध तत सारा । पीवत पीवत मिटे विकारा ।।
कंठ कमल ते हृदै प्रवेशा । तीन पाप मिट काम कलेशा ।।
उर आनन्द हुय गुण दरसावै । नाभि कमल मन पवन मिलावै ।।
नाभी रग रग रोम रकारा । नख सिख विच औषध विस्तारा ।।
बंक पछिम हुय मेरु लखावे । दसवें द्वार परम सुख पावे ।।
तिरबेनी तट अखंड आनन्दा । सून्य घर सहज मिटै दुःख द्वन्दा ।।
सून्य समाधि आदि सुख पावै । सद्‌ औषध गुरु भेद बतावै ।।

सब घट में सुख ऊपजे, दुःख न दरसे कोय ।
परस राम आरोग्यता, जीव ब्रह्म सम होय ।।
महारोग जामण मरण, फिर नहीं भुगते आय ।
अमर जड़ीका परसराम, निरणा दिया बताय ।।

हमारा आगामी कुम्भ अङ्क

१ मई को प्रकाशित हो रहा है।

इसके लिए निम्नलिखित प्रकाशनार्थ सामग्री आमन्त्रित है।

इसके लिए निम्नलिखित लेख आदि।

१—कुम्भ का महात्म्य इतिहास और तत्सम्बन्धी लेख आदि।

२—कुम्भ पर आये हुए सन्त, महन्त एवं ऋषि मुनियों का चित्र-परिचय।

३—हरिद्वार कुम्भ पर सम्पन्न विभिन्न सम्मेलन, सभा, समारोह, शोभा यात्रा, स्नान, आदि सभी शुभ कार्यों के चित्र सहित विवरण।

४—धर्म एवं आत्मज्ञानके प्रचारमें संलग्न विभिन्न संस्थाओंका चित्र-परिचय।

विश्वके सभी धर्म सम्प्रदाय एवं मतानुयायियोंके कल्याणकारी लेख, चित्र-परिचय आदि स्वीकार किए जाँयगे। प्रकाशनार्थ सामग्री १५ अप्रैल तक कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिए।

सम्पादकीय

संसार के सम्पूर्ण अनर्थ, दुःख-कष्ट, यहाँ तक कि इस शरीर में जीवात्मा के बँधने का कारण एक मन ही है। "मन एव मनुष्याणां-कारणं बन्धमोक्षयो।" प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों ही मार्गों में मन पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। मन ही प्रमुख है। बिना इसको अनुकूल किये शुभ कर्मों की सिद्धि नहीं होती। यजुर्वेद कहता है—

यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

मन ही मुक्ति-भुक्ति का साधन है। इसी को वश करना प्रमुख कर्तव्य है। जिसने मन को जीत लिया उसने संसार को जीत लिया। मन की समर्थता और महिमा बतलाते हुए ऋग्वेद कहता है—

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेकोयुधये भूयसश्चित् ॥ (ऋ. ५-३०-४)

समर्थवान् पुरुषार्थी यदि मनको स्थिर करले तो अकेला ही बहुतों को जीत सकता है।

हर प्रकार के अभ्युदय के लिये मनको वश करना अत्यन्त आवश्यक है। आज हमारे त्रितापों और पंचक्लेशों का मुख्य कारण मन की अजेयता और हमारी दुर्बलता है। अधिकांश लोग साधनमें प्रवृत्त होनेके बाद कुछ दिनमें ही निराश होकर मनके प्रति अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं। और कहते हैं कि इसका काबू में आना असम्भव है। पर वस्तुतः यह उनकी धैर्यहीनता है। मनका संयम असाध्य नहीं पर कष्टसाध्य अवश्य है। हम आप तो एक साधारण जीव हैं। महाभारत का अद्वितीय योद्धा भगवान् कृष्णका सखा अर्जुन कहता है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

परमपुरुष परमेश्वर योगीश्वर कृष्णका कृपापात्र, सदा उनके साथ रहनेवाले अर्जुनके मनकी ऐसी दशा है तब फिर साधारण जीवका मन सहजमें ही कैसे निग्रह हो सकता है ?

इस पर कृष्ण अर्जुनकी अनुभूतिका समर्थन कर सान्त्वना देते हुए मार्ग निर्देश करते हैं।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

'मन यदि अपने स्वभाववश निग्रह नहीं मानता है और प्रयत्न करने पर भी बार बार फिसल जाता है तो इससे निराश नहीं होना चाहिए। वासनाओंका त्याग, इन्द्रियोंके विषयोंसे विराग और सद्गुणोंके नित्य सतत् अभ्याससे यह धीरे धीरे वशमें हो जाता है।' इसके लिये धैर्य और परिश्रमकी आवश्यकता है। सर्कस वालोंको देखिये और उनसे प्रेरणा लीजिये। वे हिंसक पशुओं को वशमें करनेके लिये धैर्यपूर्वक कितना प्रयत्न करते हैं। एक खेलको सिद्ध करनेके लिये कितना अभ्यास करते हैं। फिर मन तो मन ही है।

"ज्ञान" मनको वशमें करनेका सबसे बड़ा साधन है। मन संसारकी लुभावनी वस्तुओंमें, उनके भोगमें मारा-मारा फिरता है। यदि संसारकी वास्तविकता उसे ज्ञात हो जाय तो यह स्वयं उससे विरत हो जाता है। जब यह ज्ञात हो जायगा कि हीरा और कोयला, सोना और

मिट्टी, नर और नारी विष और अमृत इनके मूल तत्वोंमें कोई भेद नहीं है। सबमें एक ही ब्रह्मतत्त्व भरा हुआ है, ऐसा विवेक और निष्ठा हो जाने पर मनुष्य हीरा सोना आदिको श्रेष्ठ समझ उनकी प्राप्तिके लिये अनेक छल प्रपंच आदि पापाचार क्यों करेगा ? उसका मन क्यों इधर उधर भटकेगा ? सीपमें चाँदीकी भाँति संसारको भ्रममात्र मानकर वह स्वतः स्थिर होने लगेगा। सत् असत् का ज्ञान होते ही मनकी दौड़ धूप उछल कूद समाप्त हो जाती है।

मन पत्ती तब लग उड़े विषय वासना माहिं।
ज्ञान बाजकी झपटमें जब लग आया नाहिं॥

यदि आप चाहते हैं कि हमारा काग जैसा चंचल मन स्थिर होकर मोक्ष सिद्धिमें सहायक बने तो इसे सत्संगरूपी आकाशमें उड़ने दीजिये। कभी न कभी सद्गुरुके मुखसे निकला हुआ ज्ञानरूपी बाज उसकी चंचलता को सदाके लिये समाप्त कर देगा।

यदि आप शीघ्र कार्य सिद्धि चाहें तो इस ज्ञान बाजको सन्तोंके पास बैठकर वेद शास्त्रोंमें ढूँढ़िये। सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय कर उसका मनन कीजिये। उसमें भी साररूप जो तत्त्वज्ञान है गुरु कृपासे वही ज्ञान बाज बन जाता है।

जब जब यह मन सांसारिक मोह माया और भूल भुलैयामें भटककर अपने सत्पथका त्याग करे उस समय आप उसे समझाइये— अरे भाई, क्यों उधर जाता है। जिस चीजको तू सुन्दर समझ रहा है वह वस्तुतः सुन्दर आवरणसे ढकी हुई गन्दगी है। अगर मेरी बात पर विश्वास न हो तो इस आवरणको हटा कर देख। जिन स्वर्ण, रत्नों पर तुझे घमण्ड है वह भी खानसे निकली हुई मिट्टी ही तो है। अन्तमें सभी का परिणाम एक ही है। केवल राख ही शेष बचती है। अनेकों कुकर्म करके दीन-दुखियों को सताकर ये भोग सामग्रियाँ जो तुमने जुटा रखी हैं, ये क्या तुम्हारा साथ देंगी ? क्या तुम इन्हें भोग सकते हो ? क्या पता कल ये तुम्हारे पास रहें या न रहें। सम्भव है इन्हें भोगनेके लिये तुमही कल न रहो। फिर यह अन्याय, यह झूठ, फरेब, चालबाजी किसलिये ? यह मकान, यह दूकान, यह बाग जिसे तुम अपना मानकर अहंकार में फूल रहे हो, क्या इन्हें तुम साथ लेकर आये? थे और क्या इन्हें साथ ले जा सकते हो ? हे मन ! जब ऐसा नहीं हो सकता तब फिर राग, द्वेष, क्रोध, मोहके बहकावेमें फँसकर क्यों चिपकते हो ! छोड़ो इन्हें। अपनेको पहचानो। तुम यहाँ किसलिये आये थे क्या करने लगे। "आये थे हरि भजनको ओटन लगे कपास।"

कुछ ऐसी कमाई कर जिससे तीनों ऋणोंसे मुक्ति मिले। इस मनुष्य जन्मका फल जो मोक्ष है उसे प्राप्त करनेका उद्योग करो। यह तभी सम्भव है जब हमारा मन वशमें होगा। ऐसा मन विषय वासनाओंसे हमारी रक्षा करता है। मनके सुधारका ज्ञान यह प्रथम साधन है। और ज्ञान फल भी है। ज्ञानतत्त्व परमानन्द-मय ब्रह्म ही है। जिस प्रकार सूर्यके उदय होने पर अंधकार का नाश हो जाता है। उसी प्रकार अपने शुद्ध बुद्ध स्वस्वरूपका ज्ञान होनेपर परम पुरुषार्थकी सिद्धि स्वतः हो जाती है। यही प्राप्त की प्राप्ति है।

—०—

समाचार

सद्गुरु बाबा शारदाराम जी

उदासीनपुरी आजमगढ़में

ज्ञात हुआ है कि बाबा शारदाराम मुनिजी महाराज अपनी तपोभूमि श्रीतीर्थ रामटेकड़ीसे दिनांक ६-४-६२ को प्रस्थान कर ८ अप्रैल १९६२ को आजमगढ़ जिलान्तर्गत कप्तानगंज, उदासीनपुरी, पंचमन्दिरपर विराजेंगे। यह स्थान आजमगढ़ फैजाबाद मोटर मार्गपर शहरसे १० मील है। नेमी-प्रेमी भक्तोंको लगभग एक मास तक यहाँ बाबाजीका दर्शन एवं सत्संग लाभ हो सकेगा। महाराजजीके काशी यात्राका अभी कार्य-क्रम निश्चय नहीं हुआ है।

उदासीनपुरीका रामनौमी मेला

दिनांक १३-४-६२ को उदासीनपुरी कप्तानगंजमें प्रतिवर्षकी भाँति मेलेके अवसरपर सत्संग, कीर्तन, भजन, भण्डारा आदिका आयोजन है। इस पवित्र अवसरपर श्री बाबा शारदारामजी भी विराजमान रहेंगे। ज्ञातव्य है कि यहाँ रामनवमीका विशाल मेला बाबाजीकी कृपा और प्रेरणासे लगा करता है। यह अपने क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध मेला है। ग्रामीण अञ्चलोंकी जनता अत्यधिक संख्या में सम्मिलित होकर श्रीबाबाजीके दर्शन और सत्संगका लाभ उठाती है।

कल्यानमें शारदाराम मन्दिर

ज्ञात हुआ है कि महानगरी बम्बईके पास कल्यानमें वहाँके प्रेमी प्रभुभक्त सेवकोंने एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया है। इसमें बाबा शारदारामजीकी भव्य मूर्ति तथा श्री निर्गुण महारामायण ग्रन्थकी स्थापनाकी जायगी। ज्येष्ठ मासमें यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जानेकी सम्भावना है। अभी तीथिकी घोषणा नहीं हुई है। विशेष समाचार अगले अङ्कमें देखें।

—०—

सात शत्रु सात मित्र

(पृष्ठ २६ कालम २ से आगे)

सन्तोष भी महत्वपूर्ण गुण हैं। किसी सर्व व्यापी दैवी शक्तिके प्रति श्रद्धा, अपने प्रयत्नों पर आत्म विश्वास, उच्च ध्येय और महत्वाकांक्षा, उस ध्येयपर निष्ठा और उसकी प्राप्तिके लिये कार्य करने वाले सहयोगियों के प्रति वफादारी ये सारे रचनात्मक गुण हैं, जो जीवन में सफलता और अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति करा देते हैं।

जीवन संगीतके सुरोंके ये दो सप्तक हैं इनसे हम राग युक्त संगीतका निर्माण कर सकते है या बेसुरा राग भी अलाप सकते है। शत्रुओंको त्यागकर मित्रोंसे सन्धि अंगीकार करनेसे ही जीवनकी प्रगति हो सकती है।

—०—

भद्रसेन वैद्य द्वारा कल्पना प्रेस वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।

परमानन्द संदेश
वर्ष २ अंक ६

[चैत्र २०१९
अप्रेल १९६२]

रजि० सं०
ए० १९९७

सन्तशिरोमणि

श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनि जी महाराज

तपोभूमि

श्रीतीर्थ रामटेकड़ी हड़पसर पूना